...क्षा

दोहावलीके ४१ से १०० तक दोहे

अनुवादसहित

मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास जालान,
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०००, प्रथम बार ३,०००
सं० २००२, द्वितीय बार ५,०००

मूल्य -)। सवा आना

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास जालान,
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०००, प्रथम बार ३,०००
सं० २००२, द्वितीय बार ५,०००

मूल्य -)। सवा आना

विनय-पत्रिका

[५]

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद-बड़ाई भानी ॥ १ ॥
निज घरकी बरबात बिलोकहु हौ तुम परम सयानी।
सिवकी दई संपदा देखत, श्री-सारदा सिहानी ॥ २ ॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुखकी नहीं निसानी।
तिन रंकनकौ नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी ॥ ३ ॥
दुख-दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं भीख भली मैं जानी ॥ ४ ॥
प्रेम-प्रसंसा-बिनय-ब्यंगजुत, सुनि बिधिकी बर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगत-मातु मुसुकानी ॥ ५ ॥

भावार्थ—(ब्रह्माजी लोगोंका भाग्य बदलते-बदलते हैरान होकर पार्वतीजीके पास जाकर कहने लगे—) हे भवानी ! आपके नाथ (शिवजी) पागल हैं। सदा देते ही रहते हैं। जिन लोगोंने कभी किसी-को दान देकर बदलेमें पानेका कुछ भी अधिकार नहीं प्राप्त किया, ऐसे लोगोंको भी वे दे डालते हैं, जिससे वेदकी मर्यादा टूटती है ॥ १ ॥ आप बड़ी सयानी हैं, अपने घरकी भलाई तो देखिये (यों देते-देते घर खाली होने लगा है, अनधिकारियोंको) शिवजीकी दी हुई अपार

सम्पत्ति देख-देखकर लक्ष्मी और सरस्वती भी (व्यंगसे) आपकी बड़ाई कर रही हैं ॥ २ ॥ जिन लोगोंके मस्तकपर मैंने सुखका नाम-निशान भी नहीं लिखा था, आपके पति शिवजीके पागलपनके कारण उन कंगालोंके लिये स्वर्ग सजाते-सजाते मेरे नाकों दम आ गया है ॥ ३ ॥ कहीं भी रहनेको जगह न पाकर दीनता और दुखियोंके दुःख भी दुखी हो रहे हैं और याचकता तो व्याकुल हो उठी है। लोगोंकी भाग्यलिपि बनानेका यह अधिकार कृपाकर आप किसी दूसरेको सौंपिये, मैं तो इस अधिकारकी अपेक्षा भीख माँगकर खाना अच्छा समझता हूँ ॥ ४ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजीकी प्रेम, प्रशंसा, विनय और व्यंगसे भरी हुई सुन्दर वाणी सुनकर महादेवजी मन-ही-मन मुदित हुए और जगज्जननी पार्वती मुसकराने लगीं ॥ ५ ॥

[१९]

हरनि पाप त्रिविध ताप सुमिरत सुरसरित।
बिलसति महि कल्प-बेलि मुद-मनोरथ-फरित ॥ १ ॥
सोहत ससि धवल धार सुधा-सलिल-भरित।
बिमलतर तरंग लसत रघुबरके-से चरित ॥ २ ॥
तो बिनु जगदंब गंग कलिजुग का करित ?
घोर भव-अपारसिंधु तुलसी किमि तरित ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे गङ्गाजी ! स्मरण करते ही तुम पापों और दैहिक, दैविक, भौतिक—इन तीनों तापोंको हर लेती हो। आनन्द और मनोकामनाओंके फलोंसे फली हुई कल्पलताके सदृश तुम पृथ्वीपर शोभित हो रही हो ॥ १ ॥ अमृतके समान मधुर एवं मृत्युसे छुड़ानेवाले जलसे भरी हुई तुम्हारी चन्द्रमाके सदृश धवल धारा शोभा पा रही है।

उसमें निर्मल रामचरित्रके समान अत्यन्त निर्मल तरङ्गें उठ रही हैं ॥२॥ हे जगज्जननी गङ्गाजी ! तुम न होतीं तो पता नहीं कलियुग क्या-क्या अनर्थ करता और यह तुलसीदास घोर अपार संसार-सागरसे कैसे तरता ? ॥ ३ ॥

लक्ष्मण-स्तुति

दण्डक

[३७]

लाल लाड़िले लखन, हित हौ जनके ।
सुमिरे संकटहारी, सकल सुमंगलकारी,
पालक कृपालु अपने पनके ॥ १ ॥
धरनी-धरनहार भंजन-भुवनभार,
अवतार साहसी सहसफनके ॥
सत्यसंध, सत्यव्रत, परम धरमरत,
निरमल करम वचन अरु मनके ॥ २ ॥
रूपके निधान, धनु-बान पानि,
तून कटि, महावीर विदित, जितैया वड़े रनके ॥
सेवक-सुख-दायक, सबल, सब लायक,
गायक जानकीनाथ गुनगनके ॥ ३ ॥
भावते भरतके, सुमित्रा-सीताके दुलारे,
चातक चतुर राम स्याम घनके ॥
वल्लभ उरमिलाके, सुलभ सनेहवस,
धनी धन तुलसीसे निरधनके ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे प्यारे लखनलालजी ! तुम भक्तोंका हित करनेवाले हो । स्मरण करते ही तुम संकट हर लेते हो । सब प्रकारके सुन्दर

कल्याण करनेवाले, अपने प्रणको पालनेवाले और दीनोंपर कृपा करनेवाले हो ॥ १ ॥ पृथ्वीको धारण करनेवाले, संसारका भार दूर करनेवाले, बड़े साहसी और शेषनागके अवतार हो । अपने प्रण और व्रतको सत्य करनेवाले, धर्मके परम प्रेमी तथा निर्मल मन, वचन और कर्मवाले हो ॥ २ ॥ तुम सुन्दरताके भण्डार हो, हाथोंमें धनुष-बाण धारण किये और कमरमें तरकस कसे हुए हो, तुम विश्व-विख्यात महान् वीर हो ! और बड़े-बड़े संग्राममें विजय प्राप्त करनेवाले हो । तुम सेवकोंको सुख देनेवाले, महाबली, सब प्रकारसे योग्य और जानकीनाथ श्रीरामकी गुणावलीके गानेवाले हो ॥ ३ ॥ तुम भरतजीके प्यारे, सुमित्रा और सीताजीके दुलारे तथा रामरूपी श्याम मेघके चतुर चातक, उर्मिलाजीके पति, प्रेमसे सहजहीमें मिलनेवाले और तुलसी-सरीखे रंकको राम-भक्तिरूपी धन देनेमें बड़े भारी धनी हो ॥ ४ ॥

[४२]

कबहुँ समय सुधि द्यायबी, मेरी मातु जानकी ।
जन कहाइ नाम लेत हौं, किये पन चातक ज्यों, प्यास प्रेम-पानकी॥ १॥
सरल प्रकृति आपु जानिए करुना-निधानकी ।
निजगुन, अरिकृत अनहितौ, दास-दोष सुरति चित रहत न दिये दानकी ।
बानि बिसारनसील है मानद अमानकी ।
तुलसीदास न बिसारिये, मन करम बचन जाके सपनेहुँ गति न आनकी

भावार्थ—हे जानकी माता ! कभी मौका पाकर श्रीरामचन्द्रजीको मेरी याद दिला देना । मैं उन्हींका दास कहाता हूँ, उन्हींका नाम लेता हूँ, उन्हींके लिये पपीहेकी तरह प्रण किये बैठा हूँ, मुझे उनके स्वाती-जलरूपी प्रेमरसकी बड़ी प्यास लग रही है ॥ १ ॥ यह तो आप जानती

ही हैं कि करुणा-निधान रामजीका स्वभाव बड़ा सरल है; उन्हें अपना गुण, शत्रुद्वारा किया हुआ अनिष्ट, दासका अपराध और दिये हुए दानकी बात कभी याद ही नहीं रहती ॥ २ ॥ उनकी आदत भूल जानेकी है; जिसका कहीं मान नहीं होता, उसको वह मान दिया करते हैं, पर वह भी भूल जाते हैं ! हे माता ! तुम उनसे कहना कि तुलसीदासको न भूलिये, क्योंकि उसे मन, वचन और कर्मसे स्वप्नमें भी किसी दूसरेका आश्रय नहीं है ॥ ३ ॥

[६७]

राम राम जपु जिय सदा सानुराग रे।
कलि न बिराग, जोग, जाग, तप, त्याग रे ॥ १ ॥
राम सुमिरत सब बिधि ही को राज रे।
रामको बिसारिबो निषेध-सिरताज रे ॥ २ ॥
राम नाम महामनि, फनि जगजाल रे।
मनि लिये फनि जियै, ब्याकुल बिहाल रे ॥ ३ ॥
राम-नाम कामतरु देत फल चारि रे।
कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि रे ॥ ४ ॥
राम-नाम प्रेम-परमारथको सार रे।
राम-नाम तुलसीको जीवन-अधार रे ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे जीव ! सदा अनन्य प्रेमसे श्रीरामनाम जपा कर, इस कलिकालमें रामनामके सिवा वैराग्य, योग, यज्ञ, तप और दानसे कुछ भी नहीं हो सकता ॥ १ ॥ शास्त्रोंमें विधि-निषेधरूपसे कर्म बतलाये हैं, मेरी सम्मतिमें श्रीराम-नामका स्मरण करना ही सारी विधियोंमें राजविधि है और श्रीरामनामको भूल जाना ही सबसे बढ़कर निषिद्ध कर्म है ॥ २ ॥

राम-नाम महामणि है और यह जगत्का जाल साँप है, जैसे मणि ले लेनेसे साँप व्याकुल होकर मुरझा-सा जाता है, इसी प्रकार रामनामरूपी मणि ले लेनेसे दुःखरूप जगत्-जाल आप ही नष्टप्राय हो जायगा ॥ ३ ॥ अरे! यह राम-नाम कल्पवृक्ष है, यह अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों फल देता है, इस बातको वेद, पुराण, पण्डित और शिवजी महाराज भी कहते हैं ॥ ४ ॥ श्रीराम-नाम प्रेम और परमार्थ अर्थात् भक्ति-मुक्ति दोनोंका सार है और यह रामनाम इस तुलसीदासके तो जीवनका आधार ही है ॥ ५ ॥

[८०]

देव–

और काहि माँगिये, को माँगिवो निवारै।
अभिमतदातार कौन, दुख-दरिद्र दारै ॥ १ ॥
धरमधाम राम काम-कोटि-रूप रूरो।
साहब सब विधि सुजान, दान-खडग-सूरो ॥ २ ॥
सुसमय दिन द्वै निसान सबके द्वार बाजै।
कुसमय दसरथके! दानि तैं गरीब निवाजै ॥ ३ ॥
सेवा बिनु गुनविहीन दीनता सुनाये।
जे जे तैं निहाल कियें फूले फिरत पाये ॥ ४ ॥
तुलसिदास जाचक-रुचि जानि दान दीजै।
रामचंद्र चंद्र तू, चकोर मोहिं कीजै ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे प्रभो! अब और किसके आगे हाथ फैलाऊँ? ऐसा दूसरा कौन है जो सदाके लिये मेरा माँगना मिटा दे? दूसरा ऐसा कौन मनोवाञ्छित फलोंका देनेवाला है जो मेरे दुःखदारिद्र्यका नाश

कर दे ?"॥ १ ॥ हे श्रीराम ! तू धर्मका स्थान और करोड़ों कामदेवोंके सौन्दर्यसे भी सुन्दर है। सब प्रकारसे मेरा स्वामी है, मनकी अच्छी तरह जानता है और दानरूपी तलवारके चलानेमें बड़ा शूर है ॥ २ ॥ अच्छे समयमें तो दो दिन सभीके दरवाजेपर नगारे बजते हैं, परन्तु हे दशरथ-नन्दन ! तू ऐसा दानी है कि बुरे समयमें भी गरीबोंको निहाल कर देता है ॥ ३ ॥ कुछ भी सेवा न करनेवाले, अच्छे गुणोंसे सर्वथा हीन दीन मनुष्योंने तेरे सामने अपना दुखड़ा सुनाया, उन सबको तैंने निहाल कर दिया, मैंने उन्हें आनन्दसे फूले फिरते पाया है ॥ ४ ॥ अब तुलसीदास भिखारीके मनकी जानकर (अर्थात् वह और कुछ भी नहीं चाहता, केवल तेरा प्रेम चाहता है ऐसा जानकर) दान दे और वह यही कि हे श्रीरामचन्द्र ! तू चन्द्रमा है ही, मुझे बस चकोर बना ले ॥ ५ ॥

[८८]

कबहूँ मन विश्राम न मान्यो ।
निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ तहँ इंद्रिन तान्यो ॥१॥
जदपि बिषय-सँग सह्यो दुसह दुख, बिषम जाल अरुझान्यो ।
तदपि न तजत मूढ़ ममताबस, जानतहूँ नहिं जान्यो ॥२॥
जनम अनेक किये नाना बिधि करम-कीच चित सान्यो ।
होइ न बिमल बिवेक-नीर बिनु, बेद पुरान बखान्यो ॥३॥
निज हित नाथ पिता गुरु हरिसों हरषि हृदै नहि आन्यो ।
तुलसिदास कब तृषा जाय सर खनतहि जनम सिरान्यो ॥४॥

भावार्थ—अरे मन ! तूने कभी विश्राम नहीं लिया । अपना सहज सुखस्वरूप भूलकर दिन-रात इन्द्रियोंका खींचा हुआ जहाँ-तहाँ विषयों-

में भटक रहा है ॥ १ ॥ यद्यपि विषयोंके संगसे तूने असह्य संकट सहे हैं और तू कठिन जालमें फँस गया है तो भी हे मूर्ख ! तू ममताके अधीन होकर उन्हें नहीं छोड़ता । इस प्रकार सब कुछ समझकर भी बेसमझ हो रहा है ॥ २ ॥ अनेक जन्मोंमें नाना प्रकारके कर्म करके तू उन्हींके कीचड़में सन गया है, हे चित्त ! विवेकरूपी जल प्राप्त किये बिना यह कीचड़ कभी साफ नहीं हो सकता । ऐसा वेद-पुराण कहते हैं ॥ ३ ॥ अपना कल्याण तो परम प्रभु, परम पिता और परम गुरुरूप हरिसे है, पर तूने उनको हुलसकर हृदयमें कभी धारण नहीं किया, (दिन-रात विषयोंके बटोरनेमें ही लगा रहा) हे तुलसीदास ! ऐसे तालाबसे कब प्यास मिट सकती है, जिसके खोदनेमें ही सारा जीवन बीत गया ॥४॥

[९०]

ऐसी मूढ़ता या मनकी ।
परिहरि राम-भगति-सुरसरिता, आस करत ओसकनकी ॥ १ ॥
धूम-समूह निरखि चातक ज्यों, तृषित जानि मति घनकी ।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होति लोचनकी ॥ २ ॥
ज्यों गच काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तनकी ।
टूटत अति आतुर अहार बस, छति बिसारि आननकी ॥ ३ ॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि ! जानत हौ गति जनकी ।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पनकी ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मनकी ऐसी मूर्खता है कि यह श्रीराम-भक्तिरूपी गङ्गाजीको छोड़कर ओसकी बूँदोंसे तृप्त होनेकी आशा करता है ॥ १ ॥ जैसे प्यासा पपीहा धुएँका गोट देखकर उसे मेघ समझ लेता है, परन्तु वहाँ (जानेपर) न तो उसे शीतलता मिलती है और न जल मिलता

है, धुएँसे आँखें और फूट जाती हैं (यही दशा इस मनकी है)॥ २ ॥ जैसे मूर्ख बाज काँचकी फर्शमें अपने ही शरीरकी परछाईं देखकर उस-पर चोंच मारनेसे वह टूट जायगी इस बातको भूखके मारे भूलकर जल्दीसे उसपर टूट पड़ता है (वैसे ही यह मेरा मन भी विषयोंपर टूटा पड़ता है) ॥ ३ ॥ हे कृपाके भण्डार ! इस कुचालका मैं कहाँतक वर्णन करूँ ? आप तो दासोंकी दशा जानते ही हैं। हे स्वामिन् ! तुलसीदासका दारुण दुःख हर लीजिये और अपने (शरणागत-वत्सलतारूपी) प्रणकी रक्षा कीजिये ॥ ४ ॥

[१०२]

हरि ! तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों ।
साधन-धाम विबुध-दुरलभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हों ॥ १ ॥
कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभुके, एक एक उपकार ।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं, दीजै परम उदार ॥ २ ॥
विषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक ।
ताते सहौं विपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक ॥ ३ ॥
कृपा-डोरि बनसी पद अंकुस, परम प्रेम-मृदु-चारो ।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो ॥ ४ ॥
हैं श्रुति-बिदित उपाय सकल सुर, केहि केहि दीन निहोरै ।
तुलसिदास येहि जीव मोह-रजु, जेहि बाँध्यो सोइ छोरै ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे हरे ! आपने बड़ी दया की, जो मुझे देवताओंके लिये भी दुर्लभ, साधनोंके स्थान मनुष्य-शरीरको कृपापूर्वक दे दिया ॥ १ ॥ यद्यपि आपका एक-एक उपकार करोड़ों मुखोंसे नहीं कहा जा सकता, तथापि हे नाथ ! मैं कुछ और माँगता हूँ, आप बड़े उदार हैं, मुझे कृपा

करके दीजिये ॥ २ ॥ मेरा मनरूपी मच्छ, विषयरूपी जलसे एक पलके लिये भी अलग नहीं होता, इससे मैं अत्यन्त दारुण दुःख सह रहा हूँ—बार-बार अनेक योनियोंमें मुझे जन्म लेना पड़ता है ॥३॥ (इस मनरूप मच्छको पकड़नेके लिये) हे रामजी ! आप अपनी कृपाकी डोरी बनाइये और अपने चरणके चिह्न अंकुशको बंसीका काँटा बनाइये, उसमें परम प्रेमरूपी कोमल चारा चिपका दीजिये । इस प्रकार मेरे मनरूपी मच्छको बेधकर अर्थात् विषयरूपी जलसे बाहर निकालकर मेरा दुःख दूर कर दीजिये । आपके लिये तो यह एक खेल ही होगा ॥ ४ ॥ यों तो वेदमें अनेक उपायमीरं पड़े हैं, देवता भी बहुत-से हैं, पर यह दीन किस-किसका निहोरा करता फिरे ? हे तुलसीदास ! जिसने इस जीवको मोहकी डोरीमें बाँधा है, वही इसे छुड़ावेगा ॥ ५ ॥

[१०३]

यह विनती रघुबीर गुसाईं ।
और आस-बिस्वास-भरोसो, हरो जीव-जड़ताई ॥१॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि बिपुल बड़ाई ।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ॥२॥
कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई ।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ-अंडकी नाईं ॥३॥
या जगमें जहँ लगि या तनुकी प्रीति प्रतीति सगाई ।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाईं ॥४॥

भावार्थ—हे श्रीरघुनाथजी ! हे नाथ ! मेरी यही विनती है कि इस जीवको दूसरे साधन, देवता या कर्मोंपर जो आशा, विश्वास और भरोसा है, उस मूर्खताको आप हर लीजिये ॥१॥ हे राम ! मैं शुभगति, सद्बुद्धि,

धन-सम्पत्ति, ऋद्धि-सिद्धि और बड़ी भारी बड़ाई आदि कुछ भी नहीं चाहता। बस, मेरा तो आपके चरणकमलोंमें दिनोंदिन अधिक-से-अधिक अनन्य और विशुद्ध प्रेम बढ़ता रहे, यही चाहता हूँ ॥ २ ॥ मुझे अपने बुरे कर्म जबरदस्ती जिस-जिस योनिमें ले जायँ, उस-उस योनिमें ही हे नाथ! जैसे कछुआ अपने अंडोंको नहीं छोड़ता, वैसे ही आप पल-भरके लिये भी अपनी कृपा न छोड़ना ॥ ३ ॥ हे नाथ! इस संसारमें जहाँ-तक इस शरीरका (स्त्री-पुत्र-परिवारादिसे) प्रेम, विश्वास और सम्बन्ध है, सो सब एक ही स्थानपर सिमटकर केवल आपसे ही हो जाय! ॥ ४ ॥

[१२७]

मैं जानी, हरिपद-रति नाहीं। सपनेहुँ नहिं बिराग मन माहीं ॥१॥
जे रघुबीर चरन अनुरागे। तिन्ह सब भोग रोगसम त्यागे ॥२॥
काम-भुजंग डसत जब जाही। बिषय-नींब कटु लगत न ताही ॥३॥
असमंजस अस हृदय बिचारी। बढ़त सोच नित नूतन भारी ॥४॥
जब कब राम-कृपा दुख जाई। तुलसिदास नहिं आन उपाई ॥५॥

भावार्थ—मैंने जान लिया है कि श्रीहरिके चरणोंमें मेरा प्रेम नहीं है; क्योंकि सपनेमें भी मेरे मनमें वैराग्य नहीं होता (संसारके भोगोंमें वैराग्य होना ही तो भगवच्चरणोंमें प्रेम होनेकी कसौटी है) ॥१॥ जिनका श्रीरामके चरणोंमें प्रेम है, उन्होंने सारे विषय-भोगोंको रोगकी तरह छोड़ दिया है ॥ २ ॥ जब जिसे कामरूपी साँप डस लेता है, तभी उसे विषयरूपी नीम कड़वी नहीं लगती ॥ ३ ॥ ऐसा विचारकर हृदयमें बड़ा असमंजस हो रहा है कि क्या करूँ? इसी विचारसे मेरे मनमें नित नया सोच बढ़ता जा रहा है ॥ ४ ॥ हे तुलसीदास! और कोई उपाय नहीं है; जब कभी यह दुःख दूर होगा, तो बस श्रीराम-कृपासे ही होगा! ॥५॥

[१३८]

कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक ! धरिहौ नाथ सीस मेरे ।
जेहि कर अभय किये जन आरत, बारक बिबस नाम टेरे ॥१॥
जेहि कर-कमल कठोर संभुधनु भंजि जनक-संसय मेट्यो ।
जेहि कर-कमल उठाइ बंधु ज्यों, परम प्रीति केवट भेंट्यो ॥२॥
जेहि कर-कमल कृपालु गीधकहँ, पिंड देइ निजधाम दियो ।
जेहि कर बालि बिदारि दास-हित, कपिकुल-पति सुग्रीव कियो ॥३॥
आयो सरन सभीत बिभीषन जेहि कर-कमल तिलक कीन्हों ।
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति, अभयदान देवन्ह दीन्हों ॥४॥
सीतल सुखद छाँह जेहि करकी, मेटति पाप, ताप, माया ।
निसि-बासर तेहि कर-सरोजकी, चाहत तुलसिदास छाया ॥५॥

भावार्थ—हे रघुनाथजी ! हे स्वामी ! क्या आप कभी अपने उस कर-कमलको मेरे माथेपर रक्खेंगे, जिससे आपने परतन्त्रतावश एक बार आपका नाम लेकर पुकार करनेवाले आर्त्त भक्तोंको अभय कर दिया था ॥ १ ॥ जिस कर-कमलसे महादेवजीका कठोर धनुष तोड़कर आपने महाराज जनकका सन्देह दूर किया था और जिस कर-कमलसे गुह-निषादको उठाकर भाईके समान बड़े ही प्रेमसे हृदयसे लगा लिया था ॥ २ ॥ हे कृपालु ! जिस कर-कमलसे आपने (जटायु) गीधको (पिताके समान) पिण्ड-दान देकर अपना परम धाम दिया था, और जिस हाथसे, अपने दासके लिये बालिको मारकर, सुग्रीवको बंदरोंके कुलका राजा बना दिआ था ॥ ३ ॥ जिस कर-कमलसे आपने भयभीत शरणागत विभीषणका राज्याभिषेक किया था और जिस हाथसे धनुष-बाण चढ़ा राक्षसोंका विनाश कर देवताओंको अभय-दान दिया था ॥४॥

तथा जिस कर-कमलकी शीतल और सुखदायक छाया पाप, सन्ताप और मायाका नाश कर डालती है, हे प्रभु ! आपके उसी कर-कमलकी छाया यह तुलसीदास रात-दिन चाहा करता है ॥ ५ ॥

राग सोरठ

[१६२]

ऐसो को उदार जग माहीं ।
बिनु सेवा जो द्रवै दीनपर राम सरिस कोउ नाहीं ॥१॥
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी ।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ॥२॥
जो संपति दस सीस अरप करि रावन सिव पहँ लीन्हीं ।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच-सहित हरि दीन्हीं ॥३॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो ॥४॥

भावार्थ—संसारमें ऐसा कौन उदार है, जो बिना ही सेवा किये दीन-दुखियोंपर (उन्हें देखते ही) द्रवित हो जाता हो ? ऐसे एक श्रीरामचन्द्र ही हैं; उनके समान दूसरा कोई नहीं ॥ १ ॥ बड़े-बड़े ज्ञानी मुनि योग, वैराग्य आदि अनेक साधन करके भी जिस परम गतिको नहीं पाते वह गति प्रभु रघुनाथजीने गीध और शबरीतकको दे दी और उसको उन्होंने अपने मनमें कुछ बहुत नहीं समझा ॥ २ ॥ जिस सम्पत्तिको रावणने शिवजीको अपने दसों सिर चढ़ाकर प्राप्त किया था; वही सम्पत्ति श्रीरामजीने बड़े ही संकोचके साथ विभीषणको दे डाली ॥ ३ ॥ तुलसीदास कहते हैं कि अरे मेरे मन ! जो तू सब तरहसे सब सुख चाहता है, तो श्रीरामजीका भजन कर । कृपानिधान प्रभु तेरी सारी कामनाएँ पूर्ण कर देंगे ॥ ४ ॥

[१६९]

जो मोहि राम लागते मीठे।
तौ नवरस षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे ॥ १ ॥
बंचक विषय विविध तनु धरि अनुभवे सुने अरु डीठे।
यह जानत हौं हृदय आपने सपने न अघाइ उबीठे ॥ २ ॥
तुलसिदास प्रभु सों एकहि बल बचन कहत अति ढीठे।
नामकी लाज राम करुनाकर केहि न दिये कर चीठे ॥ ३ ॥

भावार्थ—यदि मुझे श्रीरामचन्द्रजी ही मीठे लगे होते, तो (साहित्य-के) नवरस* एवं (भोजनके) छः रस† नीरस और फीके पड़ जाते (पर रामजी मीठे नहीं लगते, इसीलिये विषय-भोग मीठे मालूम होते हैं) ॥ १ ॥ मैं भाँति-भाँतिके शरीर धारण कर यह अनुभव कर चुका हूँ तथा मैंने सुना और देखा भी है कि (संसारके) विषय ठग हैं। (मायामें भुलाकर परमार्थरूपी धन हर लेते हैं) यद्यपि यह मैं अपने जीमें अच्छी तरह जानता हूँ, तथापि कभी, स्वप्नमें भी, इनसे तृप्त होकर मेरा मन नहीं उकताया (कैसी नीचता है ?) ॥ २ ॥ पर तुलसीदास अपने स्वामी श्रीरघुनाथजीसे एक ही बलपर ये ढिठाईभरे वचन कह रहा है। (और वह बल यह है कि) हे नाथ ! आपने अपने नामकी लाजसे किस-किसको दया करके (भवबन्धनसे छूटनेके लिये) परवाने नहीं लिख दिये हैं ? (जिसने आपका नाम लिया, उसीको मुक्तिका परवाना मिल गया, इसीलिये मैं भी यों कह रहा हूँ) ॥ ३ ॥

---

* शृङ्गार, हास्य, करुणा, वीर, रुद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त—साहित्यके ये नौ रस हैं।

† कड़ुआ, तीखा, मीठा, कसैला, खट्टा और नमकीन—ये छः भोजनके रस हैं।

[१७५]

जो पै रहनि/लगन रामसों नाहीं ।

तौ नर खर कूकर सूकर सम वृथा जियत जग माहीं ॥१॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास सबहीके।
मनुज देह सुर-साधु सराहत, सो सनेह सिय पीके ॥२॥
सूर, सुजान, सुपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई।
बिनु हरिभजन इँदारुनके फल तजत नहीं करुआई ॥३॥
कीरति, कुल, करतूति, भूति भलि, सील सरूप सलोने।
तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने ॥४॥

भावार्थ—जिसकी श्रीरामचन्द्रजीसे प्रीति नहीं है, वह इस संसारमें गदहे, कुत्ते और सूअरके समान वृथा ही जी रहा है ॥ १ ॥ काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख और प्यास तो सभीमें है। पर जिस बातके लिये देवता और संतजन इस मनुष्य-शरीरकी प्रशंसा करते हैं, वह तो श्रीसीतानाथ रघुनाथजीका प्रेम ही है (भगवत्प्रेमसे ही मनुष्य-जीवनकी सार्थकता है) ॥ २ ॥ कोई शूरवीर, सुचतुर, माता-पिताकी आज्ञामें रहनेवाला सुपूत, सुन्दर लक्षणवाला तथा बड़े-बड़े गुणोंसे युक्त भले ही श्रेष्ठ गिना जाता हो, परन्तु यदि वह हरिभजन नहीं करता है तो वह इन्द्रायणके फलके समान है, जो (सब प्रकारसे देखनेमें सुन्दर होनेपर भी) अपना कड़वापन नहीं छोड़ता ॥ ३ ॥ कीर्ति, ऊँचा कुल, अच्छी करनी, बड़ी विभूति, शील और लावण्यमय स्वरूप होनेपर यदि वह प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके प्रति प्रेमसे रहित है, तो ये सब गुण ऐसे ही हैं, जैसे बिना नमककी साग-भाजी ॥ ४ ॥

दोहावली

हिय फाटहुँ फूटहुँ नयन जरउ सो तन केहि काम।
द्रवहिं स्रवहिं पुलकइ नहीं तुलसी सुमिरत राम ॥ ४१ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामका स्मरण करके जो हृदय पिघल नहीं जाते वे हृदय फट जायँ, जिन आँखोंसे प्रेमके आँसू नहीं बहते वे आँखें फूट जायँ और जिस शरीरमें रोमाञ्च नहीं होता वह जल जाय (अर्थात् ऐसे निकम्मे अङ्ग किस कामके ?) ॥४१॥

रामहि सुमिरत रन भिरत देत परत गुरु पायँ।
तुलसी जिन्हहि न पुलक तनु ते जग जीवत जायँ ॥ ४२ ॥

भावार्थ—भगवान् श्रीरामका स्मरण होनेके समय, धर्मयुद्धमें शत्रुसे भिड़नेके समय, दान देते समय और श्रीगुरुके चरणोंमें प्रणाम करते समय जिनके शरीरमें विशेष हर्षके कारण रोमाञ्च नहीं होता, वे जगत्में व्यर्थ ही जीते हैं ॥ ४२ ॥

सोरठा

हृदय सो कुलिस समान जो न द्रवइ हरिगुन सुनत।
कर न राम गुन गान जीह सो दादुर जीह सम ॥ ४३ ॥

भावार्थ—श्रीहरिके गुणोंको सुनकर जो हृदय द्रवित नहीं होता; वह हृदय वज्रके समान कठोर है। और जो जीभ श्रीरामका गुणगान नहीं करती, वह जीभ मेंढककी जीभके समान व्यर्थ ही टर-टर करनेवाली है ॥ ४३ ॥

स्रवैं न सलिल सनेहु तुलसी सुनि रघुवीर जस ।
ते नयना जनि देहु राम ! करहु वरु आँधरो ॥ ४४ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हे श्रीरामजी ! मुझको भले ही अंधा बना दीजिये; परन्तु ऐसी आँखें मत दीजिये, जिनसे श्रीरघुनाथजी-का यश सुनते ही प्रेमके आँसू न बहने लगें ॥४४॥

रहैं न जल भरि पूरि राम ! सुजस सुनि रावरो ।
तिन आँखिनमें धूरि भरि भरि मूठीं मेलिये ॥ ४५ ॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! आपका सुयश सुनते ही जो आँखें प्रेम-जलसे पूरी तरह भर न जायँ, उन आँखोंमें तो मुट्ठियाँ भर-भरकर धूल झोंकनी चाहिये ॥४५॥

प्रार्थना

वारक सुमिरत तोहि होहि तिन्हहि सन्मुख सुखद ।
क्यों न सँभारहि मोहि दयासिंधु दसरत्थ के ? ॥ ४६ ॥

भावार्थ—हे दयासागर दशरथनन्दन ! जो एक बार भी तुम्हारा स्मरण करते हैं, तुम उनके सम्मुख होकर उन्हें सुख देनेवाले बन जाते हो; फिर मेरी सुधि तुम क्यों नहीं लेते ? ॥४६॥

रामकी और रामप्रेमकी महिमा

साहिब होत सरोष सेवक को अपराध सुनि ।
अपने देखे दोष सपनेहुँ राम न उर धरे ॥ ४७ ॥

भावार्थ—दूसरे मालिक तो सेवकका अपराध सुनकर ही क्रोधित हो जाते हैं (यह भी जाँच नहीं करते कि वास्तवमें उसने कोई अपराध किया है या नहीं), परन्तु श्रीरामचन्द्रजीने सेवकके अपराधोंको स्वयं अपनी आँखोंसे देख लेनेपर भी स्वप्नमें भी कभी उनपर ध्यान नहीं दिया

[अथवा श्रीरामचन्द्रजीने अपने ही दोषोंको देखा, अपने सेवकके अपराधोंको सपनेमें भी हृदयमें स्थान नहीं दिया] ॥४७॥

दोहा

तुलसी रामहि आपु तें सेवक की रुचि मीठि ।
सीतापति से साहिबहि कैसे दीजै पीठि ॥४८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामजीको अपनी रुचिकी अपेक्षा सेवककी रुचि अधिक मधुर लगती है (वे अपनी रुचि छोड़ देते हैं, परन्तु सेवककी रुचि रखते हैं) । ऐसे श्रीसीतापतिके समान स्वामीसे क्योंकर विमुख हुआ जाय ? ॥४८॥

तुलसी जाके होयगी अन्तर बाहिर दीठि ।
सो कि कृपालुहि देइगो केवटपालहि पीठि ॥४९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसके भीतरी और बाहरी दृष्टि होगी, अर्थात् जो लोक-लीला और परमतत्त्व दोनोंको समझता होगा, वह क्या केवटकी रुचिकी रक्षा करनेवाले (चरण पखरवाकर उसे कुलसहित तारनेवाले) कृपालु श्रीरामजीसे कभी विमुख होगा ? ॥४९॥

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान ।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान ॥५०॥

भावार्थ—वानरोंके स्वामी श्रीरामजी तो पेड़के नीचे विराजते थे और सेवक होनेपर भी वानर पेड़की डालियोंपर बैठते थे, तो भी (इस अशिष्टतापर कोई ध्यान न देकर) प्रभुने उनको अपने ही समान बना लिया ? तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामजीके समान शीलके भण्डार स्वामी और कहीं भी नहीं है ॥५०॥

उद्बोधन

रे मन सब सों निरस है सरस राम सों होहि।
भलो सिखावन देत है निसि दिन तुलसी तोहि ॥५१॥

भावार्थ—रे मन! तू संसारके सब पदार्थोंसे प्रीति तोड़कर श्रीरामसे प्रेम कर। तुलसीदास तुझको रात-दिन यही सत्-शिक्षा देता है ॥५१॥

हरे चरहिं तापहिं बरे फरें पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत सब परमारथ रघुनाथ ॥५२॥

भावार्थ—वृक्ष जब हरे होते हैं, तब पशु-पक्षी उन्हें चरने लगते हैं, सूख जानेपर लोग उन्हें जलाकर तापते हैं और फलनेपर फल पानेके लिये लोग हाथ पसारने लगते हैं (अर्थात् जहाँ हरा-भरा घर देखते हैं, वहाँ लोग खानेके लिये दौड़े जाते हैं; जहाँ बिगड़ी हालत होती है, वहाँ उसे और भी जलाकर सुखी होते हैं और जहाँ सम्पत्तिसे फला-फूला देखते हैं, वहाँ हाथ पसारकर माँगने लगते हैं)। तुलसीदासजी कहते हैं कि इस प्रकार जगत्में तो सब स्वार्थके ही मित्र हैं। परमार्थके मित्र तो एकमात्र श्रीरघुनाथजी ही हैं। (जो सब समय ही प्रेम करते हैं और दीन स्थितिमें तो विशेष प्रेम करते हैं) ॥५२॥

स्वारथ सीता राम सों परमारथ सिय राम।
तुलसी तेरो दूसरे द्वार कहा कहु काम ॥५३॥

भावार्थ—श्रीसीतारामसे ही तेरे सब स्वार्थ सिद्ध हो जायँगे और श्रीसीताराम ही तेरे परमार्थ (परम ध्येय) हैं; तुलसीदासजी कहते हैं कि फिर बतला तेरा दूसरेके दरवाजेपर क्या काम है? ॥५३॥

स्वारथ परमारथ सकल सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर ॥५४॥

भावार्थ—जब एक श्रीरामचन्द्रजीकी ओरसे ही सब स्वार्थ और परमार्थ सुलभ हैं, तब हे तुलसी ! तुझे दूसरेके दरवाजेपर दीनता दिखलाना उचित नहीं है ॥५४॥

तुलसी स्वारथ राम हित परमारथ रघुबीर ।
सेवक जाके लखन से पवनपूत रनधीर ॥ ५५ ॥

भावार्थ—तुलसीदासका तो स्वार्थ भी रामके लिये है और परमार्थ भी वे श्रीरघुनाथजी ही हैं, जिनके श्रीलक्ष्मणजी और रणधीर श्री हनुमान्‌जी-जैसे सेवक हैं ॥५५॥

ज्यों जग बैरी मीन को आपु सहित बिनु बारि ।
त्यों तुलसी रघुबीर बिनु गति आपनी बिचारि ॥ ५६ ॥

भावार्थ—जैसे जलको छोड़कर सारा जगत् ही मछलीका वैरी है, यहाँतक कि वह आप भी वैरीका काम करती है (जीभके स्वादके लिये काँटेमें अपना मुँह फँसा लेती है), वैसे ही हे तुलसीदास ! एक श्रीरघुनाथजीके बिना अपनी भी यही गति समझ ले (अपना ही मन वैरी बनकर तुझे विषयोंमें फँसा देगा) ॥५६॥

तुलसीदासजीकी अभिलाषा

राम प्रेम बिनु दूबरो राम प्रेमहीं पीन ।
रघुबर कबहुँक करहुगे तुलसिहि ज्यों जल मीन ॥ ५७ ॥

भावार्थ—जैसे मछली जलमें रहनेसे—जलके संयोगसे पुष्ट होती है और जलके बिना दुबली हो जाती है, जलके वियोगमें मर जाती है, वैसे ही हे श्रीरघुनाथजी ! आप इस तुलसीदासको कब ऐसा करेंगे जब वह श्रीराम (आप) के प्रेमके बिना मछलीकी भाँति दुबला जाय और श्रीराम (आप) के प्रेमसे ही पुष्ट हो ? ॥५७॥

रामप्रेमकी महत्ता

राम सनेही राम गति राम चरन रति जाहि ।
तुलसी फल जग जनम को दियो विधाता ताहि ॥ ५८ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं—जो श्रीरामका ही प्रेमी है, श्रीराम ही जिसकी गति है और श्रीरामके ही चरणोंमें जिसकी प्रीति है, बस, उसीको विधाताने जगत्में जन्म लेनेका यथार्थ फल दिया है ॥५८॥

आपु आपने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम ।
तेहि के पग की पानहीं तुलसी तनु को चाम ॥ ५९ ॥

भावार्थ—अपनी और अपने सम्बन्धी समस्त पदार्थोंकी अपेक्षा जिसे श्रीसीतारामजी अधिक प्रिय हैं, तुलसीदासके शरीरका चमड़ा ऐसे प्रेमी भक्तके चरणोंकी जूतियोंमें लगे तो उसका सौभाग्य है ॥५९॥

स्वारथ परमारथ रहित सीता राम सनेहँ ।
तुलसी सो फल चारि को फल हमार मत एहँ ॥ ६० ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि स्वार्थ (भोग) और परमार्थ (मोक्ष) की इच्छासे रहित जो श्रीसीतारामके प्रति निष्काम और अनन्य प्रेम है, वह अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों फलोंका भी महान् फल है—यह मेरा मत है ॥६०॥

जे जन रूख विषय रस चिकने राम सनेहँ ।
तुलसी ते प्रिय राम को कानन बसहिं कि गेहँ ॥ ६१ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो विषय-रससे विरक्त हैं और रामप्रेमके रसिक हैं, वे ही श्रीरामजीको प्यारे हैं—फिर चाहे वे वनमें रहें या घरमें (विरक्त हों या गृहस्थ) ॥६१॥

जथा लाभ संतोष सुख रघुबर चरन सनेह ।
तुलसी जो मन खूँद सम कानन बसहुँ कि गेह ॥ ६२ ॥

भावार्थ—जो कुछ मिल जाय उसीमें जिनका मन सन्तुष्ट और सुखी रहता है और जिसमें श्रीरघुनाथजीके चरणोंका प्रेम भरा है—जिनका मन ऐसा खूँद-सा* बन गया है, तुलसीदासजी कहते हैं कि वे वनमें रहें या घरमें—उनके लिये दोनों एक-से हैं ॥६२॥

तुलसी जौं पै राम सों नाहिन सहज सनेह ।
मूँड़ मुड़ायो बादिहीं भाँड़ भयो तजि गेह ॥ ६३ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि श्रीरामचन्द्रजीसे स्वाभाविक प्रेम नहीं है तो फिर वृथा ही मूँड़ मुँड़ाया—साधु हुए और घर छोड़कर भाँड़ बने (वैराग्यका स्वाँग भरा) ॥६३॥

रामविमुखताका कुफल

तुलसी श्रीरघुबीर तजि करै भरोसो और ।
सुख संपति की का चली नरकहुँ नाहीं ठौर ॥ ६४ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो मनुष्य श्रीरघुनाथजीको छोड़कर दूसरा कोई भरोसा करता है—सुख-सम्पत्तिकी तो बात ही दूर है, उसे नरकमें भी जगह नहीं मिलेगी ॥६४॥

तुलसी परिहरि हरि हरहि पाँवर पूजहिं भूत ।
अंत फजीहति होहिंगे गनिका के से पूत ॥ ६५ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीहरि (भगवान् विष्णु) और श्रीशङ्करजीको छोड़कर जो पामर भूतोंकी पूजा करते हैं, वेश्याके

---

* घोड़ा एक ही स्थानपर खड़ा हुआ टाप चलाता रहता है परन्तु स्थान नहीं छोड़ता, उस स्थितिको खूँद कहते हैं । इसी प्रकार सब कुछ करते हुए भी जिनका मन श्रीरामप्रेममें अचल रहता है, उन्हींके सम्बन्धमें यह बात कही गयी है ।

पुत्रोंकी तरह उनकी अन्तमें बड़ी दुर्दशा होगी ॥६५॥

सेये सीता राम नहिं भजे न संकर गौरि ।
जनम गँवायो वादिहीं परत पराई पौरि ॥ ६६ ॥

भावार्थ—यदि श्रीसीतारामजीकी सेवा नहीं की और श्रीगौरीशंकरका भजन नहीं किया तो पराये दरवाजेपर पड़े रहकर वृथा ही जन्म गँवाया ॥६६॥

तुलसी हरि अपमान तें होइ अकाज समाज ।
राज करत रज मिलि गये सदल सकुल कुरुराज ॥ ६७ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीहरिका अपमान करनेसे हानियोंका समाज जुट जाता है अर्थात् हानि-ही-हानि होती है । [सन्धि करानेके लिये कौरवोंकी राजसभामें दूत बनकर गये हुए] भगवान् श्रीकृष्णका अपमान करनेसे राज्य करते हुए कुरुराज दुर्योधन अपनी सेना और कुटुम्बके सहित धूलमें मिल गये (नष्ट हो गये) ॥६७॥

तुलसी रामहि परिहरें निपट हानि सुनु ओझ ।
सुरसरि गत सोई सलिल सुरा सरिस गंगोझ ॥ ६८ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि अरे पण्डित ! सुनो, श्रीरामजीको छोड़ देनेसे अत्यन्त हानि होती है । श्रीगङ्गाजीका वही जल श्रीगङ्गाजीसे अलग हो जानेपर मदिराके समान हो जाता है* । [इसी प्रकार श्रीरामसे विमुख होकर विषयोंका संग करनेसे परमात्माका अंश जीव अपवित्र होकर नरकगामी हो जाता है] ॥६८॥

---

* शास्त्रका भी वचन है—

गङ्गाया निःसृतं तोयं पुनर्गङ्गां न गच्छति ।
तत्तोयं मदिरातुल्यं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

राम दूरि माया बढ़ति घटति जानि मन माँह।
भूरि होति रवि दूरि लखि सिर पर पगतर छाँह ॥ ६९॥

भावार्थ—जैसे सूर्यको दूर देखकर छाया लंबी हो जाती है और सूर्य जब सिरपर आ जाता है तब वह ठीक पैरके नीचे आ जाती है, उसी प्रकार श्रीरामजीसे दूर रहनेपर माया बढ़ती है और जब वह श्रीरामजीको मनमें विराजित जानती है, तब घट जाती है ॥६९॥

साहिब सीतानाथ सों जब घटिहै अनुराग।
तुलसी तबहीं भाल तें भभरि भागि है भाग ॥ ७० ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं—जब स्वामी श्रीजानकीनाथजीसे प्रेम घट जायगा, तब उस आदमीके मस्तकसे सौभाग्य तुरंत ही विकल होकर भाग जायगा। (अर्थात् जो मनुष्य भगवान् श्रीरामसे विमुख हो जाता है, उसका सारा सुख-सौभाग्य नष्ट हो जाता है) ॥७०॥

करिहौ कोसलनाथ तजि जबहिं दूसरी आस।
जहाँ तहाँ दुख पाइहौ तबहीं तुलसीदास ॥ ७१ ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि कोसलपति श्रीरामजीको छोड़कर जभी दूसरी आशा करोगे तभी जहाँ-तहाँ दुःख ही पाओगे ॥७१॥

बिंधि न ईंधन पाइऐ सायर जुरै न नीर।
परै उपास कुबेर घर जो बिपच्छ रघुबीर ॥ ७२ ॥

भावार्थ—यदि श्रीरघुनाथजी प्रतिकूल हो जायँ तो फिर (घनी लकड़ियोंवाले) विन्ध्याचलमें ईंधन नहीं मिलेगा, समुद्रमें जल नहीं जुड़ सकेगा और धनपति कुबेरके घर भी फाका पड़ जायगा ॥७२॥

बरषा को गोबर भयो को चहै को करै प्रीति।
तुलसी तू अनुभवहि अब राम बिमुख की रीति ॥ ७३ ॥

भावार्थ–तुलसीदासजी कहते हैं कि तू अब श्रीरामजीसे विमुख मनुष्यकी गतिका तो अनुभव कर; वह बरसातका गोबर हो जाता है (जो न तो लीपनेके काममें आता है न पाथनेके) अर्थात् निकम्मा हो जाता है। उसे कौन चाहेगा? और कौन उससे प्रेम करेगा? ॥७३॥

सबहि समरथहिं सुखद प्रिय अच्छम प्रिय हितकारि।
कबहुँ न काहुहि राम प्रिय तुलसी कहा बिचारि ॥७४॥

भावार्थ–[संसारकी यह दशा है कि] जो समर्थ पुरुष हैं, उन सबको तो [सांसारिक] सुख देनेवाला प्रिय लगता है और असमर्थको अपना [सांसारिक] भला करनेवाला प्रिय होता है। तुलसीदासजी विचारकर ऐसा कहते हैं कि भगवान् श्रीराम [विषयी पुरुषोंमें] कभी किसीको भी प्रिय नहीं लगते ॥७४॥

तुलसी उद्यम करम जुग जब जेहि राम सुडीठि।
होइ सुफल सोइ ताहि सब सनमुख प्रभु तन पीठि ॥७५॥

भावार्थ–तुलसीदासजी कहते हैं—जब जिसपर श्रीरामकी सुदृष्टि होती है, तब उसके सब उद्यम (क्रियमाण) और कर्म (प्रारब्ध) दोनों सफल हो जाते हैं और वह शरीरकी ममता छोड़कर प्रभुके सम्मुख हो जाता है ॥७५॥

राम कामतरु परिहरत सेवत कलि तरु ठूँठ।
स्वारथ परमारथ चहत सकल मनोरथ झूँठ ॥७६॥

भावार्थ–जो मनुष्य श्रीरामरूपी कल्पवृक्षको छोड़कर सूखे ठूँठ-जैसे [निःसार] कलियुग अर्थात् पापरूपी वृक्षका सेवन करते हैं और उससे स्वार्थ और परमार्थरूपी फल चाहते हैं, उनके सभी मनोरथ व्यर्थ होते हैं (अर्थात् स्वार्थ, परमार्थ कुछ भी सिद्ध नहीं होता) ॥७६॥

कल्याणका सुगम उपाय

निज दूषन गुन राम के समुझें तुलसीदास।
होइ भलो कलिकालहूँ उभय लोक अनयास ॥७७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं—अपने दोषों (अपराधों) तथा श्रीरामके [क्षमा, दया आदि] गुणोंको समझ लेनेपर अथवा दोषोंको अपना किया और गुण भगवान् श्रीरामके दिये हुए मान लेनेसे इस कलिकालमें भी मनुष्यका इस लोक और परलोक दोनोंमें सहज ही कल्याण हो जाता है ॥७७॥

कै तोहि लागहिं राम प्रिय कै तू प्रभु प्रिय होहि।
दुइ में रुचै जो सुगम सो कीबे तुलसी तोहि ॥७८॥

भावार्थ—या तो तुझे राम प्रिय लगने लगें या प्रभु श्रीरामका तू प्रिय बन जा। दोनोंमेंसे जो तुझे सुगम जान पड़े तथा प्रिय लगे, तुलसीदासजी कहते हैं कि तुझे वही करना चाहिये। (अर्थात् या तो सबसे प्रेम छोड़कर श्रीरामको ही अपना एकमात्र प्रियतम मान ले या प्रभुके शरण होकर सब कुछ उन्हें समर्पण कर दे, जिससे वे तुझे अपना अत्यन्त प्रिय मान लें) ॥७८॥

तुलसी दुइ महँ एकही खेल छाँड़ि छल खेलु।
कै करु ममता राम सों कै ममता परहेलु ॥७९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि छल छोड़कर तू दोनोंमेंसे एक ही खेल खेल—या तो केवल रामसे ही ममता कर या ममताका सर्वथा त्याग कर दे ॥७९॥

श्रीरामजीकी प्राप्तिका सुगम उपाय

निगम अगम साहेब सुगम राम साँचिली चाह।
अंबु असन अवलोकिअत सुलभ सबै जग माँह ॥८०॥

भावार्थ—जो हमारे स्वामी वेदोंके लिये भी अगम हैं (वेद भी जिनको 'नेति-नेति' कहते हैं) वे ही श्रीराम सच्ची चाहसे ऐसे सुगम हो जाते हैं जैसे जल और अन्न जगत्‌में सबके लिये सुलभ देखे जाते हैं ॥८०॥

सनमुख आवत पथिक ज्यों दिएँ दाहिनो बाम।
तैसोइ होत सु आप को त्यों ही तुलसी राम ॥८१॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि सामने आते हुए पथिकको आप दायें-बायें जिस ओर देकर चलेंगे उसी प्रकार वह भी आपके दायें-बायें हो जायगा। ऐसे ही श्रीरामको भी जो जिस प्रकार भजता है, श्रीराम भी उसे उसी प्रकार भजते हैं* ॥८१॥

रामप्रेमके लिये वैराग्यकी आवश्यकता

राम प्रेम पथ पेखिऐ दिएँ बिषय तन पीठि।
तुलसी केंचुरि परिहरें होत साँपहू दीठि ॥८२॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि विषयोंकी ओर पीठ देनेसे ही (विषयोंमें वैराग्य होनेसे ही) श्रीरामजीके प्रेमका पथ दिखलायी पड़ता है। साँपको भी केंचुल छोड़ देनेपर ही दिखलायी देने लगता है ॥८२॥

तुलसी जौं लौं बिषय की मुधा माधुरी मीठि।
तौ लौं सुधा सहस्र सम राम भगति सुठि सीठि ॥८३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जबतक विषयोंकी मिथ्या माधुरी मीठी लगती है, तबतक हजार अमृतके समान मधुर होनेपर भी रामभक्ति बिल्कुल फीकी प्रतीत होती है ॥८३॥

शरणागतिकी महिमा

जैसो तैसो रावरो केवल कोसलपाल।
तौ तुलसी को है भलो तिहूँ लोक तिहुँ काल ॥८४॥

---

* ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। (गीता ४। ११)

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हे कोशलपति श्रीरामजी ! जैसा-तैसा (भला-बुरा) यह तुलसीदास केवल आपका ही है । यदि यह बात सच है तो तीनों लोकोंमें (यह जहाँ कहीं रहे) और तीनों कालोंमें (भूत, भविष्य और वर्तमानमें) इसका कल्याण-ही-कल्याण है ॥८४॥

है तुलसी कें एक गुन अवगुन निधि कहैं लोग ।
भलो भरोसो रावरो राम रीझिवे जोग ॥८५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि लोग मुझको अवगुणोंका भण्डार कहते हैं, परन्तु मुझमें एक गुण यह है कि मुझको आपका पूरा भरोसा है; इसीसे हे रामजी ! आपको मुझपर रीझ जाना योग्य है ॥८५॥

भक्तिका स्वरूप

प्रीति राम सों नीति पथ चलिय राग रिस जीति ।
तुलसी संतन के मते इहै भगति की रीति ॥८६॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामजीसे प्रेम करना और राग (आसक्ति या काम) एवं क्रोधको जीतकर नीतिके मार्गपर चलना संतोंके मतसे भक्तिकी यही रीति है ॥८६॥

कलियुगसे कौन नहीं छला जाता ?

सत्य बचन मानस बिमल कपट रहित करतूति ।
तुलसी रघुबर सेवकहि सकै न कलिजुग धूति ॥८७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जिनके वचन सत्य होते हैं, मन निर्मल होता है और क्रिया कपटरहित होती है, ऐसे श्रीरामजीके भक्तोंको कलियुग कभी धोखा नहीं दे सकता (वे मायामें नहीं फँस सकते)॥८७॥

तुलसी सुखी जो राम सों दुखी सो निज करतूति ।
करम बचन मन ठीक जेहि तेहि न सकै कलि धूति ॥८८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो मनुष्य श्रीरामजीसे (भगवान् श्रीरामकी कृपासे ही) अपनेको सब प्रकारसे सुखी होना और (श्रीरामजीको छोड़कर) अपनी अहङ्कारभरी करतूतोंसे दुखी होना मानता है, जिसके कर्म, वचन और मन ठीक हैं (भगवान्‌में लगे हैं) उसको कलियुग धोखा नहीं दे सकता ॥८८॥

गोस्वामीजीकी प्रेम-कामना

नातें नाते राम कें राम सनेहँ सनेहु।
तुलसी माँगत जोरि कर जनम जनम सिव देहु ॥८९॥

भावार्थ—तुलसीदास हाथ जोड़कर वरदान माँगता है कि हे शिवजी! मुझे जन्म-जन्मान्तरोंमें यही दीजिये कि मेरा श्रीरामके नाते ही किसीसे नाता हो और श्रीरामके प्रेमके कारण ही प्रेम हो ॥८९॥

सब साधन को एक फल जेहिं जान्यो सो जान।
ज्यों त्यों मन मंदिर बसहिं राम धरें धनु बान ॥९०॥

भावार्थ—सब साधनोंका यही एकमात्र फल है कि जिस किसी प्रकारसे भी हो धनुष-बाण धारण करनेवाले श्रीरामजी मन-मन्दिरमें निवास करने लगें। जिसने इस रहस्यको जान लिया, वही यथार्थ जाननेवाला है ॥९०॥

जौं जगदीस तौ अति भलो जौं महीस तौ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि राम चरन अनुराग ॥९१॥

भावार्थ—यदि श्रीरामजी समस्त जगत्‌के स्वामी हैं तो बहुत ही अच्छी बात है; और यदि वे केवल पृथ्वीके स्वामी—राजा हैं तो भी मेरा बड़ा भाग्य है। (राम कोई भी हों) तुलसीदास तो जन्मभर श्रीरामके चरणकमलोंमें प्रेम ही चाहता है ॥९१॥

परौं नरक फल चारि सिसु मीच डाकिनी खाउ।
तुलसी राम सनेह को जो फल सो जरि जाउ ॥९२॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं—मैं चाहे नरकमें पड़ूँ, चारों फल (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) रूपी बालकोंको चाहे मृत्युरूपी डाकिनी खा जाय, श्रीरामजीसे प्रेम करनेका और भी जो कुछ फल हो वह जल जाय। [किन्तु फिर भी मैं तो श्रीरामके चरणोंमें प्रेम ही करता रहूँगा]॥९२॥

रामभक्तके लक्षण

हित सों हित, रति राम सों, रिपु सों बैर बिहाउ।
उदासीन सब सों सरल तुलसी सहज सुभाउ ॥९३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि रामभक्तका ऐसा सहजस्वभाव होना चाहिये कि श्रीराममें उसका प्रेम हो, मित्रोंसे मैत्री हो, वैरियोंसे वैरका त्याग कर दे, किसीमें पक्षपात न हो और सबसे सरलताका व्यवहार हो ॥९३॥

तुलसी ममता राम सों समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख दास भए भव पार ॥९४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जिनकी श्रीराममें ममता और सब संसारमें समता है, जिनका किसीके प्रति राग, द्वेष, दोष और दुःखका भाव नहीं है, श्रीरामके ऐसे भक्त भवसागरसे पार हो चुके हैं ॥९४॥

उद्बोधन

रामहि डरु करु राम सों ममता प्रीति प्रतीति।
तुलसी निरुपधि राम को भएँ हारेहूँ जीति ॥९५॥

भावार्थ—श्रीरामसे डरो, श्रीराममें ही ममता, प्रेम और विश्वास

करो । तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामकी कपटरहित सेवक हो रहने-पर हारनेमें भी जीत ही है ॥९५॥

तुलसी राम कृपालु सों कहि सुनाउ गुन दोष ।
होय दूबरी दीनता परम पीन संतोष ॥९६॥

भावार्थ-तुलसीदासजी कहते हैं कि तुम कृपालु श्रीरामजीसे अपने सब गुण-दोष दिल खोलकर सुना दो । इससे तुम्हारी दीनता दुबली (कम) हो जायगी और सन्तोष परम पुष्ट (दृढ़) हो जायगा ॥९६॥

सुमिरन सेवा राम सों साहब सों पहिचानि ।
ऐसेहु लाभ न ललक जो तुलसी नित हित हानि ॥९७॥

भावार्थ—श्रीरामजीका स्मरण हो, श्रीरामजीकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त हो और श्रीराम-सरीखे स्वामीको तत्त्वसे पहचान लिया जाय । ऐसे परम लाभके लिये भी जो नहीं ललचाता । तुलसीदासजी कहते हैं कि उसके हितकी सर्वथा हानि ही है ॥९७॥

जानें जानन जोइऐ विनु जानें को जान ।
तुलसी यह सुनि समुझि हियँ आनु धरें धनु बान ॥९८॥

भावार्थ—जाननेपर ही जानना देखा जाता है, बिना जाने कौन जान सकता है ? (जब हम किसीको जानने लगते हैं, तभी क्रमशः उसका यथार्थ ज्ञान—साक्षात्कार होता है; जाननेकी चेष्टा ही न करें तो कैसे जानेंगे ?) तुलसीदासजी कहते हैं कि यह बात सुनकर और समझकर धनुष-बाण धारण किये हुए श्रीरामजीको अपने हृदयमें ले आओ । (ध्यान करते-करते ही साक्षात्कार हो जायगा) ॥९८॥

करमठ कठमलिआ कहैं ग्यानी ग्यान विहीन।
तुलसी त्रिपथ विहाइ गो राम दुआरें दीन ॥९९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि कर्मठ (कर्मकाण्डी) लोग तो मुझे काठकी माला धारण करनेवाली 'कठमलिया' कहते हैं, ज्ञानी मुझको ज्ञानविहीन बतलाते हैं [और उपासना करना मैं जानता ही नहीं]। मैं तो तीनों मार्गोंको छोड़, दीन होकर श्रीरामचन्द्रजीके दरवाज़ेपर जा पड़ा हूँ ॥९९॥

बाधक सब सब के भए साधक भए न कोइ।
तुलसी राम कृपालु तें भलो होइ सो होइ ॥१००॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि इस जगत्‌में तो सब लोग सबके बाधक ही होते हैं, साधक कोई किसीका नहीं है। कृपालु श्रीरामजीसे ही भला होता है सो होता है ॥१००॥